पुस्तक समीक्षा

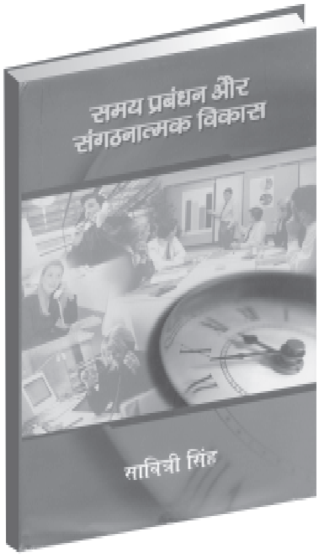

समय प्रबंधन और संगठनात्मक विकास

संपादक : श्रीमती सावित्री सिंह

पृष्ठ सं.:163

मूल्य : रु. 225/-

प्रकाशन : आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंचकुला

समीक्षक : रमाकान्त 'कान्त'*

एक प्रचलित दन्तकथा है। रावण ने दिक्पालों व देवताओं को पराभूत कर अपने अधिकार में कर लिया था। वह इतना सक्षम था कि स्वर्ग तक सीढ़ियां बनवा सके। ऐसा वह कर सकता था व करने का इच्छुक भी था पर कर नहीं पाया। इसका मूल कारण था कि वह आलस्य व समयचक्र को नियंत्रित नहीं कर पाया। प्रमाद व कालचक्र को न थाम पाने के कारण वह स्वर्ग तक सीढ़ियां बनवाने का स्वप्न साकार नहीं कर सका। यदि वह ऐसा कर पाता तो इतिहास कुछ और होता। शायद समय प्रबंधन की कमी के कारण उसने मिले हुए अवसर को गंवा दिया।

जाहिर है, जब रावण जैसा अद्वितीय योद्धा समय को विजित नहीं कर पाया तो किसी अन्य की क्या बिसात कि वह उससे पार पा सके। समय को जीता जा सकता है, "समयानुशासन" से। दूसरे शब्दों में उसे समय प्रबंधन कहते हैं। लेखिका श्रीमती सावित्री सिंह, भारतीय रिज़र्व बैंक के पुणे स्थित कृषि बैंकिंग महाविद्यालय में प्रबंधक हैं। उन्होंने पुस्तक 'समय प्रबंधन और संगठनात्मक विकास' में इसी सर्वकालिक सत्य को सिद्ध करने का सार्थक प्रयास किया है। यह 163 पृष्ठीय पुस्तक मे. आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंचकूला द्वारा प्रकाशित की गई है तथा इसका मूल्य 225/- रुपये मात्र है।

लेखिका ने पुस्तक की विषयवस्तु को 14 अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में परिचयात्मक शुरुआत के साथ समय प्रबंधन के मायने एवं विद्वत्जनों के कथनों को उद्धरित करते हुए उनके निहितार्थ को विश्लेषित कर, समय प्रबंधन की महत्ता स्पष्ट की गई है। साथ ही संगठन के परिप्रेक्ष्य में समय प्रबंधन की विशिष्टताओं व अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में आप, हम व आमजन के लिए समय की अहमियत बताई गई है। जीवनचक्र का वर्गीकरण देखकर तो आंखें खुल जाती हैं कि 70 वर्ष की औसत आयु में मनुष्य मात्र 8.6% समय (6 वर्ष) ही काम करने में व्यतीत करता है। यदि उसमें भी ठीक से समय प्रबंधन न हुआ तो कल्पना कीजिए कि वह कितने अल्प समय सार्थक काम कर पाता है।

तृतीय अध्याय में पौराणिक काल से वर्तमान व पूर्व से पश्चिम तक जिन्होंने समय की महत्ता को जाना, समझा व अधिकतम उपयोग कर उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त कीं, उनके सशक्त उदाहरणों का उल्लेख किया है। इनमें सटीक प्रेरक प्रसंग भी दिये गए हैं जिन्हें पढ़कर पाठक समय नष्ट किये जाने वाली आदतों पर क्षोभ व्यक्त करता हुआ उसके सदुपयोग के लिए कृत संकल्प होने का निश्चय व्यक्त करता है। चौथे अध्याय में समय का वर्गीकरण निजी व कार्यालयीन स्वरूप में करते हुए अनेक अवसर गिनाये हैं जब व्यक्ति समय गंवा कर कॅरियर में मिलने वाले अवसरों को गंवा देता है। व्यक्ति की स्थिति

** उप प्रबंधक (राजभाषा), स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर,*

"चिड़िया चुग गई खेत, पछताए क्या होत है", वाली हो जाती है। इस अध्याय में लक्ष्य निर्धारण, कार्यों का प्रत्यायोजन, समय नियोजन व किसी कार्य में खर्च किये गए समय के मूल्य निर्धारण जैसे बिन्दुओं को उभारा गया है।

अगले अध्याय में समय सीमा का निर्धारण और उसमें लक्ष्य की प्राप्ति चाहे वह निजी जीवन में हो या कार्यालय में, का उल्लेख किया गया है। मुख्य कार्यालयीन कार्यों का उल्लेख करते हुए उनमें लगने वाले समय तथा उसे यों ही गंवा देने को इंगित करते हुए उसे बचाने के उपाय बताये गए हैं। छठे अध्याय में समय का आइना दिखाते हुए उसके परिप्रेक्ष्य में संप्रेषण कौशल की विशद् व्याख्या की गई है।

आगे वाले अध्याय में बताया है कि उचित समय प्रबंधन का अभाव विभिन्न तनावों से ग्रसित कर देता है। उससे मुक्ति के लिए समय प्रबंधन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। कार्य को संपादित करने का आयोजन किस भांति करें कि वह कुशल समय प्रबंधन कहलवाए, के बारे में अगले अध्याय में प्रकाश डाला गया है। "क्या करना है, कब करना है, कौन करेगा, क्यों करेगा, किस तरह करेगा".ऐसे प्रश्न हैं जिनका समयोचित उत्तर, कुशल आयोजन का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रबंधन चाहे निजी हो या संगठनात्मक, परिवर्तन की संभावनाएं सदैव बनी रहती हैं। तीव्र गति से बदल रही प्रौद्योगिकी के युग में परिवर्तन जहां समय की जरूरत है, वहीं अवश्यम्भावी भी है। संगठन तंत्र में सबको साथ लेकर चलना होता है, अतः परिवर्तन प्रबंधन (Change Management) को सुचारू रूप से लागू करना बेहद जरूरी है।

उल्लेखनीय है कि उपयुक्त लक्ष्य निर्धारण किये बिना समुचित प्रबंधन नहीं हो सकता। लक्ष्यहीन भटकती यात्रा से बचने के लिए अल्प व दीर्घ कालीन लक्ष्य निर्धारित किये जाने की जरूरत होती है। सुदीर्घ योजनाओं को फलीभूत करने के लिए विभिन्न चरणों में अल्पकालीन योजनाओं को लागू करना पड़ता है तब जा कर समय का निशाना लक्ष्य को साध पाता है। आगामी अध्याय में अभिप्रेरणा (Motivation) के महत्त्व को दर्शाया गया है जिसके माध्यम से संगठनात्मक ढांचे में मानव संसाधन को विकसित कर उसे समयबद्ध रूप से उत्पादक कार्यों में नियोजित किया जाना संभव है।

यह कहा जाए तो अन्यथा नहीं कि जो समय को भूलते हैं, समय उन्हें भुला देता है। यह विषय वस्तु है, "समय को भूलना-दुनिया में झूलना" अध्याय की। इसमें उन कारकों पर प्रकाश डाला गया है जो मनुष्य के समय को नष्ट करते हैं। ऐसे पलों को कैसे संजो कर काम में लिया जाए कि कम समय व थकान में परिणामजन्य कार्य का निष्पादन हो सके। यह शोध चौंकाने वाला है कि हम कार्यकारी समय का 75% भाग ऐसे कार्यों में गंवा देते हैं जो महत्त्वपूर्ण नहीं होते। इस तरह जीवनवृत्त की उपलब्धियों का सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है।

अंतिम दो अध्यायों में पूर्व अध्यायों का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए समय प्रबंधन के प्रायोगिक तरीकों का उल्लेख किया गया है। संगठनात्मक ढांचे में हम किस तरह निरर्थक समय खोने वाले कारकों से बच सकते हैं और किन उपायों से कार्य को सुचारु व गतिशीलता से संपन्न कर सकते हैं, विस्तार से बताया है। अंतिम अध्याय में कई महत्त्वपूर्ण जानकारियां यथा, टाइम जोन, ग्रीन विच टाइम, सप्ताह से सम्बन्धित दिवसों, घण्टे-मिनट-सैकंड्स, कैलेण्डर वर्ष, मानक समय आदि के बारे में ज्ञान व रुचिवर्द्धक जानकारियां जुटाई हैं। पुस्तक के अंत में जिन ग्रंथों व वेबसाइटों से जानकारियां जुटाई गई हैं, उनका उल्लेख किया गया है।

यह महत्त्वपूर्ण है कि समीक्षाधीन पुस्तक भारतीय रिज़र्व बैंक की 'बैंकिंग विषयों पर मौलिक हिन्दी पुस्तक लेखन योजना' के अंतर्गत प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक की श्रेष्ठता एवं उपादेयता का स्वयंसिद्ध प्रमाण है। फिर भी विषयों की विशद् व्याख्या के प्रयास में पुस्तक कई जगह विषय से भटकती हुई प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए संप्रेषण कौशल, परिवर्तन प्रबंधन, अभिप्रेरणा वाले अध्याय यद्यपि मूल विषय से सम्बद्ध हैं किन्तु उन्हें पढ़ते हुए पाठक को बार-बार याद रखना पड़ता है कि पुस्तक "समय प्रबंधन" पर लिखी गई है। त्रुटिहीनता पुस्तक का उज्वल पक्ष है, अन्यथा साहित्य से इतर पुस्तकों में प्रायः प्रूफ की गलतियां देखने को मिलती हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यह सरल व बोधगम्य भाषा में "समय प्रबंधन व संगठनात्मक विकास" पर लिखी गई संदेशपरक पुस्तक है। लेखिका ने गूढ़ विषय को सटीक उदाहरणों व उद्धरणों द्वारा व्याख्यायित किया है। निःसंदेह इस पुस्तक को उनकी श्रेष्ठ कृति कहा जा सकता है जिसके लिए पुस्तक की लेखिका श्रीमती सावित्री सिंह ही नहीं अपितु उनके सहयोगी तथा उसे चयनित करने वाले विद्वतजन (चयन समिति) भी बधाई के पात्र हैं।

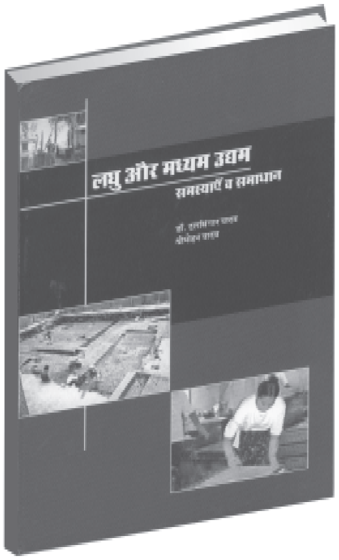

लघु और मध्यम उद्यम
समस्याएँ व समाधान

लेखक : डॉ. दलसिंगार यादव और श्रीमोहन यादव
पृष्ठ संख्या : 182
मूल्य : रु. 350/-
प्रकाशक : सुमिमु प्रकाशन "पृथ्वीराज", प्लॉट नं.17, राजेंद्रनगर, हिंगणा रोड, नागपुर
वितरक : एच. आर. यादव, डी-606, सुमेर कैसल कॉम्प्लेक्स, एल. बी. शास्त्री मार्ग, ठाणे (पश्चिम) - 400 601
ईमेल : sumimu@hotmail.com, rvp@rvparishad.org
समीक्षक : डॉ. रामदयाल

लघु और मध्यम उद्यम भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माने जाते हैं। यह उद्यम देश के विकास के लिए संजीवनी साबित हुए हैं। लघु और मध्यम उद्यमों का विकास भारतीय औद्योगीकरण नीति का प्रमुख हिस्सा है। लघु और मध्यम उद्यम भारतीय जनसंख्या के लिए रोजगार के बहुत अवसर पैदा करते हैं। यह सर्वविदित है कि देश का विकास और उद्योगों का चोलीदामन का साथ है। आज के विश्व में यह परिदृश्य देखने को मिलता है कि वही देश पिछड़े हुए हैं जो औद्योगिक रूप से पिछड़े हैं। हमारा देश विकासशील श्रेणी से विकसित राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर है जिसके लिए औद्योगीकरण की गति को बढ़ाने की आवश्यकता है। इसमें लघु और मध्यम उद्यमों की भूमिका अहम होगी। लघु और मध्यम उद्यम कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग 40 प्रतिशत तथा निर्यात में लगभग 35 प्रतिशत योगदान करते हैं। कम लागत और अधिक श्रमिकों को रोज़गार के अवसर मुहैया कराने की क्षमता वाला होने के कारण लघु और मध्यम उद्यम अधिक रोजगारोन्मुखी हैं और गांवों के औद्योगीकरण में भी इनका बहुमूल्य योगदान है। हमारे राष्ट्रपिता ने गांवों की गरीबी दूर करने के लिए ग्राम व कुटीर उद्योग तथा लघु उद्योगों को स्थापित करने का सुझाव दिया था।

आज लघु और मध्यम उद्यम सम्पूर्ण विश्व में सबसे तेज विकसित हो रहे क्षेत्रों में से एक हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में बढ़ते वैश्वीकरण के कारण लघु और मध्यम उद्यमों को नई चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसके समाधान के लिए भारत सरकार ने सराहनीय प्रयास किए हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए डॉ. दलसिंगार यादव व श्रीमोहन यादव ने 'लघु और मध्यम उद्यम : समस्याएँ व समाधान' शीर्षक से पुस्तक लिखी है।

पुस्तक में, भारत में औद्योगीकरण की स्थिति, रोजगार में लघु और मध्यम उद्यमों की भूमिका, लघु उद्योगों की संरचना, सरकार के इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयासों का ब्यौरा, लघु और मध्यम उद्यमों की समस्याओं और चुनौतियों का उल्लेख तथा इन उद्यमों के लिए ऋण की उपलब्धता तथा वित्तीय समस्याओं के बारे में भी विस्तार से चर्चा की गई है। इसके साथ ही क्रेडिट रेटिंग, रुग्ण इकाइयों का पुनर्वास, वैश्वीकरण के दौर में बाजार में उभरती चुनौतियों तथा विश्व व्यापार संगठन का प्रभाव, उद्यमिता के विकास के लिए सुझाव तथा इन उद्यमों में कंप्यूटर की नई तकनीक के प्रयोग का समायोजन इस पुस्तक की विषय वस्तु का प्रमुख अंग है।

लेखकों ने पुस्तक के प्रथम अध्याय में लघु और मध्यम उद्यम के मूल भाव को समझाने का भरपूर प्रयास किया है। लघु और मध्यम उद्यम का परंपरागत व वर्तमान स्वरूप, रोजगार सृजन में इन उद्यमों की भूमिका तथा सरकार द्वारा किए जा रहे नीतिगत सहयोग के बारे में लेखकों ने सुनियोजित ढंग से वर्णन किया है।

लेखकों ने पुस्तक के द्वितीय अध्याय में लघु और मध्यम उद्यमों के सामने आनेवाली समस्याओं और चुनौतियों का वर्णन किया है। मेरे विचार से यह चरण इस विषय वस्तु की आत्मा प्रतीत होता है। लेखकों के अनुसार लघु और मध्यम उद्यमों के सामने प्रमुख समस्या व चुनौती बड़े उद्योगों के साथ स्पर्धा

* *कृषि अधिकारी, देना बैंक, भचाऊ, भुज*

तथा मुक्त व्यापार व्यवस्था से उत्पन्न परिस्थितियाँ हैं जिनसे पार पाने के लिए लेखकों ने कई सुझाव दिए हैं। लेखकों ने इस बारे में लिखा है कि विश्व बाजार में प्रतियोगिता बढ़ जाने के कारण भारतीय लघु और मध्यम उद्यमों के लिए प्रतियोगिता में टिके रहना मुश्किल हो रहा है। भारत को एशिया के बड़े उत्पादक देशों, जैसे, चीन, कोरिया, इंडोनेशिया व थाईलैण्ड से प्रतियोगिता में मुकाबला करने के लिए लेखकों ने लागत घटाने, क्षमता के विस्तार और बुनियादी ढांचे के विकास पर ध्यान केंद्रित करने के सुझाव दिए हैं। कृषि क्षेत्र के व्यापक संसाधन तथा कृषि आधारित उद्योगों की संभावनाओं को विश्व बाजार में भुनाना होगा। लेखकों के इस तर्क से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। भारत में इन उद्यमों की अपार संभावना है क्योंकि हमारे देश में कच्चा माल व श्रमिक दोनों का आधिक्य है। लेखकों ने इस परिप्रेक्ष्य में इन उद्यमों में आने वाली वित्तीय समस्याओं से अवगत कराया है तथा इस समस्या को इस क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या माना है। लेखकों के अनुसार इस क्षेत्र को वित्तीय समस्याओं से अक्सर जूझना पड़ता है। ये समस्याएँ दो प्रकार की हैं जिन्हें आंतरिक और बाह्य वित्तीय समस्याओं के रूप में विस्तार से वर्णित किया गया है। आंतरिक समस्याओं में अपर्याप्त पूंजी, गलत लाभांश नीतियां, निधियों का अपवर्तन, अनुचित लेखांकन इत्यादि आते हैं। दूसरी समस्याएँ बाह्य वित्तीय समस्याएं हैं जिन पर उद्यमियों का नियंत्रण नहीं होता है। लेखकों ने वित्तीय सहायता व वित्तपोषण के संभावित बाधक कारणों का बिंदुवार वर्णन किया है। पुस्तक में ऋण की उपलब्धता बढ़ाने के उपायों व सुझावों के बारे में विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

बैंकों की संगठनात्मक संरचना के बदलाव के लिए लेखकों के सुझाव तार्किक व संगत हैं। लेखकों ने इसके लिए लिखा है कि आज बैंकों में संगठन की परंपरागत उर्ध्वाकार अधिकार क्रम ढांचानुमा (लाइन ऐंड स्टाफ) संरचना है जबकि आज की आवश्यकता आर्गेनिक किस्म की संरचना की है जिसमें अधिकारों का समान वितरण हो। इस अध्याय में वित्तीय संस्थाओं और उनसे प्राप्त सहायता के बारे में पाठकों को अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई गई है। इस क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए यह अध्याय अत्यंत उपयोगी है।

अधिकतर लोगों को ऋण देने वाली संस्थाओं व उनसे मिलने वाली सहायता के बारे में जानकारी का अभाव होता है जो इस पुस्तक से पूरा हो जाता है। लेखकों ने ऋण संबंधी व अन्य आकड़ों को तालिका, आरेख तथा ग्राफ द्वारा समझाने का प्रयास किया है जो काफी हद तक अपनी सार्थकता साबित करता है। इन उद्यमों के विकास के लिए रिजर्व बैंक तथा सरकार द्वारा गठित समितियों की सिफारिशों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। सरकार द्वारा इन उद्यमों के समुचित विकास के लिए गठित किए गए निगमों की कार्यशैली, ऋण उपलब्धता तथा इन निगमों की इस क्षेत्र में भूमिका का विस्तृत वर्णन किया गया है।

लेखकों ने लघु और मध्यम उद्यमों की साख निर्धारण व ऋण इकाइयों के पुनर्वास से संबंधित समुचित जानकारी इस पुस्तक के माध्यम से प्रदान की है। साख निर्धारण की महत्ता को विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है तथा उद्योगों के अच्छे विकास के लिए इसे आवश्यक माना गया है। लेखकों ने साख निर्धारण के लिए विशिष्ट एजेंसियों, जैसे, स्मेरा व क्रिसिल का उल्लेख पुस्तक में किया है। लेखक लघु उद्योग क्षेत्र में रुग्णता के कारणों का खुलासा करते हुए लिखते हैं कि प्रबंध कौशल के अभाव के कारण तथा मांग व बिक्री की समस्याओं से इन इकाइयों का अधिक नुकसान हुआ है। लेखकों ने कुछ हद तक सरकारी नीतियों को भी जिम्मेदार ठहराया है। रुग्ण इकाइयों के पुनर्वास के लिए रिज़र्व बैंक, केंद्र सरकार व राज्य सरकारों द्वारा किए जा रहे प्रयासों का पूर्ण ब्यौरा पुस्तक में समाहित किया गया है।

लेखकों ने औद्योगिक नीति 2000 को लघु व मध्यम उद्यमों हेतु प्राणदायिनी माना है। इसके साथ लेखकों ने बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों, विशेष आर्थिक क्षेत्रों, निर्यात संवर्द्धन पार्क, इनलैंड कंटेनर डिपो व एकल खिड़की प्रणाली इत्यादि के बारे में अधिक से अधिक जानकारी मुहैया कराई है। लेखकों ने आज के युग में वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में बाजार में उभरती चुनौतियों व लघु व मध्यम उद्यमों पर विश्व व्यापार संगठन के प्रभाव पर अत्यंत ही सरलता से प्रकाश डाला है। लघु व मध्यम उद्यमों को आँचल (संरक्षण) में रहकर व्यापार करने का लाभ इस खुले अंतरराष्ट्रीय व्यापार के माहौल में नहीं मिल रहा है। इसलिए इससे निपटने के अनेक कारगर उपाय लेखकों ने इस पुस्तक में समाहित किए हैं। इसके साथ ही विश्व व्यापार संगठन के सिद्धांतों व उनके कार्यकलापों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी जुटाने की कोशिश की गई है।

उद्यमिता विकास के महत्वपूर्ण कारकों का विस्तार से वर्णन करके लेखकों ने इस क्षेत्र में अपने श्रेष्ठ ज्ञान की मोहर लगा दी है। इस अध्याय में उद्यमिता के विकास के लिए कार्य करने वाली संस्थाओं के बारे में समुचित जानकारी उपलब्ध कराई गई है।

लेखकों ने अपनी पुस्तक के अंतिम पड़ाव में लघु और मध्यम उद्यमों में नई तकनीक के इस्तेमाल का पुरजोर समर्थन किया है। छोटे व मध्यम कारोबारियों के लिए कंप्यूटरीकरण योजना

और नेटवर्किंग से संबंधित जानकारी, कारोबार की जरूरत के अनुसार अप्लिकेशन सॉफ़्टवेयर तैयार करना और उनका समुचित उपयोग करना तथा सावधानियों का विस्तृत वर्णन लेखक ने अपनी पुस्तक में किया है जो कि आज के युग के लिए अति आवश्यक व लाभप्रद है। इसके जरिए उद्यमी अपना बहुमूल्य समय बचा सकता है तथा उत्पादन व अपनी कार्य क्षमता में वृद्धि कर सकता है।

यह पुस्तक भारतीय रिज़र्व बैंक की बैंकिंग विषयों पर मौलिक रूप से हिंदी में पुस्तक लेखन योजना के अंतर्गत प्रकाशित की गई है। पुस्तक का विमोचन रिज़र्व बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री वी एस दास द्वारा 21 मई 2007 को पंजाब नैशनल बैंक द्वारा आयोजित राष्ट्रीय सेमीनार "लघु और मध्यम उद्यम : चुनौतियाँ व समाधान" में किया गया। पुस्तक समसामयिक तथा विश्व भर में बहुचर्चित विषय पर अद्यतन जानकारी और नवीनतम आँकड़ों (2007 तक) से परिपूर्ण है।

इसकी उपयोगिता का परिचय यह है कि भारत में अधिकांश लोग हिंदी समझते हैं तथा इस विषय पर हिंदी में इतनी महत्वपूर्ण जानकारी दुर्लभ ही है जिसे यह पुस्तक पूरी करती है। यह पुस्तक लेखकों की कौशलता को दर्शाती है तथा पुस्तक की विषय वस्तु उसके शीर्षक की सार्थकता को पूर्ण करती है। लेखकों ने इस विषय पर अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाई है। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक बैंकों, उद्यमियों तथा कॉमर्स के विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी।

पुस्तक की भाषा प्रवाहमय तथा सरल है। इसकी ज़िल्दबंदी तथा छपाई उच्च स्तर की है जिसे देखते हुए इसकी कीमत ज़्यादा नहीं लगती है। यह बैंकों के प्रशिक्षण महाविद्यालयों तथा अन्य पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय ग्रंथ है।

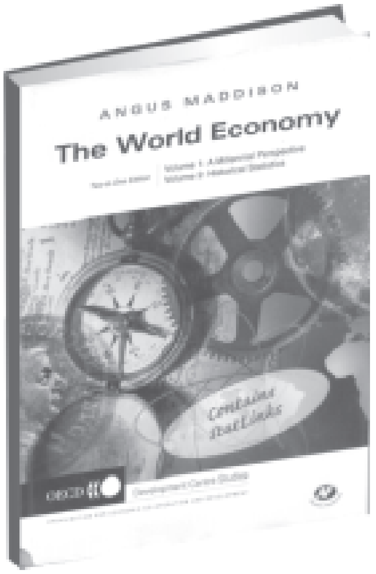

The World Economy
A Millennial Perspective

Author: Angus Maddison
Pages: 381
Price: Rs. 1295/-
Publisher: OECD Development Centre Studies, Paris
Reviewed by: S. Chinngaihlian*

To meet the resurgence of interest in long-term economic growth, and consequently, the need for long-term data on the countries of the world 'The World Economy: A Millennial Perspective' provides data on GDP and population growth for the past millennium, enables quantification of long-term changes, and is, therefore, of exceptional interest and for research, it is a must.

World Economy is a continuation of Maddison's 1995 book, *Monitoring the World Economy*, which covers the period 1820-1992 (which itself was a continuation of his 1991 book *Dynamic Forces in Capitalist Development*). What is new in *World Economy* is that the data are provided from the year 1000 (although not for all countries). The author attempts to quantify the economic performance of nations over the very long term, identifying the various factors which explain the success of the rich countries, and exploring the obstacles that hindered progress in less developed regions. He places the main onus of economic performance over the past millennium on (a) conquest and settlement, (b) international trade and capital movements, and (c) technological and institutional innovation. The book is organized into three chapters and six appendices.

In the first chapter, the author presents contours of world development by analyzing the trends in population and GDP per capita growth from 1 AD to the present, but focuses mainly on the last millennium. Comparing the

**Research Officer, Reserve Bank of India, New Delhi*

two millennia, he shows that in the last millennium, the world's population increased 22-fold, world GDP nearly 300-fold and there was considerable improvement in per capita income as also in life expectancy, while during the first millennium there has not been much improvement in these parameters.

Quantifying economic history, the author provides comparable estimates for literally all countries of the world for very long periods, going back to 0 AD for all major regions, to 1000 for most major countries, and to 1950 for literally all countries of the world except the former Soviet Union and eastern Europe, which are covered from 1973 to 1998. These estimates are based on an extensive and meticulous use of primary and secondary sources, well documented in the volume. Estimates of GDP per capita provide fascinating insights into the rise and fall of nations as world leaders in GDP per capita. Till 1000, India and other Asian nations had highest per capita income in the world. Later, during the first two thirds of the 16th century (and before) Italy was the richest country in the world, well above that of its closest rival, Britain. Around 1564, the Netherlands overtook Italy and remained the world leader until around 1836, a very long stretch, replaced by the United Kingdom during the last two thirds of the 19th century. Around 1904, the United States replaced the United Kingdom as leader, a situation that still continues today.

Maddison's estimates of per capita GDP which throw some light on India's relative economic performance make an interesting reading. As tracked by Maddison's during the years 0 to 1000, India was pretty much the pre-eminent economic power in the world, with China trailing close by. India had the world's largest economy with a 32.9 per cent share of world GDP in the 1st century and 28.9 per cent in the 11th century. In 1700, when most of India was ruled by the Mughals, it had a 24.4 per cent share of world GDP as against Europe's share 23.3 per cent, fell drastically to 3.8 per cent by 1952.

In the second chapter, Maddison attempts to explain changes in the character of economic leadership that have occurred over the past millennium. He presents four case histories: the Venetian Republic, Portugal, the Netherlands, and Britain, and shows how misleading it is to treat the western experience as homogeneous. This chapter describes at length the geographic discoveries and trade that took place in the middle of the millennium; it also focuses on the impact of British expansion on America, Africa, and Asia.

Venetian Republic was the richest and most successful West European economy from the 11th to the 16th century. Portugal was never as rich as Venice, but developed ship design and navigational techniques which made it possible to open up new routes to commercial contact with Africa and Asia. Portugal pioneered European expansion into the Atlantic, discovered Brazil in 1500 and began three centuries of colonial development in the Americas. The Netherlands was the European leader in terms of per capita income between 1600 and 1820, with a high degree of international openness and specialization, and a very large trading Empire in Asia. The United Kingdom followed the Dutch model of international specialization and commercial development, built a much larger colonial empire, and was a pioneer in industrial and transport technology.

The fall of Europe from the 1st to 10th centuries was mainly on account of the collapse of large scale cohesive political unit which was never resurrected, disappearance of urban civilization where feudal elite extracted an income in kind from servile peasantry and virtual disappearance of trading links between Western Europe, North Africa and Asia. However, between 1000-1500 Western Europe's population grew faster than any other part of the world, recovering and forging ahead in manufacturing and commercial activity. With increased food security, there were big advances in banking, marine insurance, quality of intellectual life and spread, and at the end of 15th century, the introduction of printing.

The third chapter examines the world economy in the second half of the 20th century, a period for which data are easier to find, but still not as easy for some non-western countries, analyzing the economic performance of the advanced capitalist countries, resurgent Asia, the

problem economies of East Asia, West Asia, Latin America, the former USSR and Eastern Europe, and Africa. During the Second half of the 20^{th} century the world economy performed better than any time in the past. World GDP increased six fold with an annual average growth of 3.9 per cent compared with 1.6 per cent during 1820-1950 and 0.3 per cent during 1500-1820. Volume of commodity trade rose faster than GDP. The ratio of export-GDP rose from 5.5 per cent in 1950 to 17.2 in 1998. Flow of foreign investment to the poorer parts of the world (Africa, Asia excluding Japan and Latin America) rose significantly resulting in the rise in stock of foreign capital from 4 per cent to 22 per cent of their GDP. Resurgence in international migration wherein, Western European countries absorbed more than 20 million immigrants and the Western Offshoots 34 millions.

Maddison's path-breaking quantification of the economic developments in the underdeveloped countries, however, makes a depressing reading. He shows that with the exception of what he calls resurgent Asia (China, South Korea, Taiwan, Singapore, Hong Kong, Thailand, Malaysia and eight other somewhat less successful Asian countries), all regions of the underdeveloped world have experienced a much worse economic growth performance in the last quarter of the 20th century than in the third quarter. The region with the worst economic performance in the second half of the 20th century has been Africa. Ten out of 57 African countries were worse off in terms of per capita GDP in 1998 than in 1950. The average African today is no better off that the average Western European nearly 200 years ago. One factor behind this situation has been the corruption of African elites, where 40 per cent of African private wealth now consists of assets held abroad, and the huge external debt since 1980.

The extensive appendices provide invaluable information on world population, GDP, and GDP per capita for all parts of the world for very long time periods with over 200 tables. Appendix A presents data on 1820-1998. Maddison explains the way the data are converted into PPP values, permitting a comparison between countries and over time. He also explains the differences in the population and GDP data between World Economy and his 1995 book. Appendix B is the main new offering of World Economy. It presents the data from 1500-1800 as well as aggregate data from the year 1, shows the alternative estimates of world population, comparing his results with other research. The other four appendices (C, D, E & F) present the GDP estimates for 1950-1998, the data for the Eastern European countries during the transition, data on employment, labor productivity, and exports for 1870-1998.

Maddison's tremendous works and insights into the drivers of economic growth through his comprehensive quantitative analysis of the history of the millennium hold great relevance for contemporary policy makers. In *World Economy*, Maddison has presented data from secondary sources as well as from his own calculations. The accuracy of his data might occasionally be questionable, since some of these are merely based on guesswork and proxy procedures, though these assumptions and procedure have been described transparently so that the discerning reader can augment or reject parts of the evidence or introduce alternative hypotheses.

Analysis of GDP trends across regions and countries make significant and interesting revealation that India was the pre-eminent economic power in the world till as late as 17^{th} century. India, in terms of share of world GDP was the highest till the 1^{st} millennium with a share of 28.9 per cent, second only to China during 1500-1600. Even during the Mughal period in 1700, Indian share amounted to 24.4 per cent to world GDP which was higher than the richest European nation. Thereafter it started falling to 16 per cent further to its lowest 3.1 per cent in 1973. So ideally India should be termed as re-emerging rather than a developing economy. While the author narrated the sharp decline in some Asian and rest of the African economies in the second half of the 20th century, reasons for this need to be explored further. An interesting hypothesis could be whether the colonial regime led to devastation of this magnitude?